P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

राजस्थानी लघुचित्रों में 'श्रीकृष्ण' चित्रण

पवन कुमार जाँगिड.
सहायक आचार्य,
चित्रकला विभाग,
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
किशनगढ, राजस्थान

जितेश कुमार जांगिड़
सहायक आचार्य,
चित्रकला विभाग,
एस.जी.पी.बी. राजकीय कन्या
महाविद्यालय,
पाली, राजस्थान

सारांश

कला के क्षेत्र में राजस्थान के लघु चित्र विश्वकला की अनमोल धरोहर हैं किशनगढ़, बूंदी, कोटा, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर तथा अलवर आदि विभिन्न शैलियों में जो लघु चित्रों की परम्परा विकसित हुई है उसने न केवल राजस्थान के कलात्मक गौरव को विकसित किया अपितु सम्पूर्ण देश के लिए ये कला शैलियाँ कला की अनुपम देन सिद्ध हुई। अपभ्रंश, गुजराती व स्थानीय शैलियों से प्रश्रय पाकर उद्भव होने वाली राजस्थानी शैली मुगल प्रभाव ग्रहण कर और भी परिष्कृत हुई।

जिस प्रकार यूनान में वीनस व रोम में अफ्रोदिती को महत्व दिया गया है। उसी प्रकार भारतीय पारम्परिक लघु चित्रों के रचयिताओं ने अपने चित्रांकन में जितना अंकन श्रीकृष्ण और उनकी लीलाओं का किया है उतना अन्य किसी विषय का नहीं। श्रीकृष्ण व उनके विभिन्न रूपो का अंकन उनके लिए सदैव प्रेरणादायी रहा है।

ऐतिहासिक तथ्यानुसार कला में श्रीकृष्ण लीलाओं का अंकन शुंग, कुषाण, गुप्त काल से लेकर उत्तर मध्य काल में अपभ्रंश शैली के उद्भव के साथ ही इनकी विभिन्न लीलाओं को कलाकारों ने अपनी तूलिका का विषय बनाया।

तत्कालीन कवियों तथा चित्रकारों ने श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों में उनकी शिशु अवस्था, बाल लिलाओं तथा उनको श्रृंगार व अभिसार का प्रतीक मानकर उन्हें नायिकाओं के साथ प्रेम प्रसंग में संलग्न दिखाया गया है तथा इनके प्रेम रूप को संयोग व वियोग, दोनों रंगो में अपनी रचना में उपस्थित किया है। यही कारण है कि प्रत्येक काव्य तथा चित्र कृति के प्रमुख नायक श्रीकृष्ण माने गये परिणाम स्वरूप राजस्थान लघु चित्र कला में श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध असंख्य चित्र तैयार हुए।

मुख्य शब्द : सभ्यताएं, रेखांकन, म्यूरल चित्रण, रिलीफ अंकन, अजन्ता, पौथी चित्र, गुफाएं, अपभ्रंश, शैलियां, राजस्थानी, लघुचित्र, रियासत, मेवाड़, राजपूत, रागमाला, बारहमासा, वैष्णव, श्रृंगार, श्रीकृष्ण, नायक, नायिका, श्री नाथजी, ऋतु चित्रण, बणी–ठणी, प्रेम, तूलिका, रंग, रूप, यथार्थ, राग–रागनियां।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से लेकर आज तक राम एवं कृष्ण का चरित्र भारतीय जनमानस में आदर्श रूप में लोकप्रिय रहा है। कृष्ण भक्ति का मुख्य स्त्रोत 'भागवत पुराण' है। भक्तिकाल व रीतिकाल में वैष्णव धर्म की जो अनवरत धारा बही उसके प्रभाव में भक्ति से लेकर श्रृंगार और विलास तक कलाकारों ने भगवान कृष्ण के चित्रों का अंकन किया कृष्ण कलाकारों के प्रिय नायक थे। इसके अलावा सूरदास, केशवदास तथा बिहारी की रचनाओं के आधार पर अनेक चित्रों का चित्रण हुआ। किशनगढ़, जयपुर, बूंदी, कोटा, बीकानेर में लघुचित्रों का निर्माण हुआ। हजारों की संख्या में बने इन चित्रों में विषय–वस्तु की विविधता के साथ कलात्मक रुचि एवं श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं। ये तमाम शैलियां राजस्थान की अलग–अलग रियासतों में पनपकर पूर्णता को प्राप्त हुई जिनका न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास में वरन विश्वकला के इतिहास में विशेष स्थान हैं। तत्कालीन कवियों व चित्रकारों ने श्रीकृष्ण की कल्पना व अभिव्यंजना एक सबल प्रेमी, बलशाली नायक तथा प्रतिभाशाली नीतिज्ञ के रूप में की थी। प्राचीन भक्त कवियों में विल्वमंगल विद्यापति आदि ऐसे कवि थे जिन्होंने श्रीकृष्ण के प्रेमरूप को संयोग और वियोग दोनों रंगों में रंग कर अपनी रचनाओं में उपस्थित किया, यही कारण रहा कि प्रत्येक काव्य तथा चित्रकृति के प्रमुख नायक श्री कृष्ण माने गए। कलाकारों ने अपने चित्रों में कल्पना की उड़ान के द्वारा राधाकृष्ण की युगल लीला के अनेक चित्र बनाए। इस सुन्दर धरा पर उनका सम्पूर्ण जीवन जिसमें बाल्यकाल, किशोरावस्था, युवावस्था व अनन्तकाल समस्त

मानव समुदाय हेतु प्रेरणादायी सिद्ध हुआ तथा श्री कृष्ण जीवन कि विभिन्न अवस्थाओं में अलग–अलग रूप में प्रस्तुत हुए जिससे आज के कलाकारों, साहित्यकारों व कवियों ने प्रेरणा प्राप्त की।

भारतीय चित्रण परम्परा की पृष्ठभूमि

''विश्व भर की विभिन्न कलाओं में जिस प्रकार यूनान, रोम आदि कलाओं ने अपनी श्रेष्ठता कायम की है उसी प्रकार भारतीय कला जगत की गोद में पल्लवित अजन्ता, एलोरा, खजुराहों, राजस्थानी, मुगल आदि लघुचित्र शैलियों ने भी वैश्विक कला जगत में अपनी अलग पहचान बनाई है।'' यह सर्वविदित है कि विश्व की विभिन्न सभ्यताओं का जन्म (लगभग 3500–1500 ई.पू.) नदी घाटियों के किनारो जैसे भारत–सिन्धु, मिश्री–नील, मेसापोटामिया–दजला फरात, चीनी–पीली नदी व चारों समभ्यताएं कांस्य युग में पल्लवित हुई तथा एक दूसरे के समकालीन थी।[1] भारतीय कला में प्रागयुग में गुफाओं की दीवारों पर ज्यामितीय रेखांकन देखने को मिलता है तत्पश्चात् सिन्धु सभ्यता ने कला को विशिष्ट मार्ग प्रशस्त किया जिसमें धातु की मूर्तियों का निर्माण व दो तीन रंगों से ज्यामितीय चित्रांकन मिट्टी के बर्तनों पर सम्भवतः देखने को मिलता है। वैदिक युग में महलों के शाही कक्ष में म्यूरल चित्रण व रिलीफ अंकन देखने को मिलता है तथा 'सीता' की स्वर्ण प्रतिमा मूर्तिकला का विशिष्ट उदाहरण है।[2] तत्पश्चात् मौर्य, शुंग, कुषाण व गुप्त आदि युगों में भी कला का उत्तरोत्तर विकास हुआ, जिसकी परिणिति चित्रकला की दृष्टि से अजन्ता व मूर्तिकला की दृष्टि से गुप्तकाल में हुई। इसी समय जोगीमारा बाघ, सिगिरीया आदि गुफाओं में भी चित्रांकन देखने को मिलता है। मध्यकाल स्थापत्य की दृष्टि से श्रेष्ठ काल रहा है तथा चित्रण पौथी चित्रों के रूप में प्रारम्भ हुआ जिसमें बौद्ध व जैन धर्म प्रमुख रहा। जैन व पाल शैलियों में चित्रण मुख्यतः विकृत आकृतियों के रूप में हुआ जो कला व साहित्य का प्राकृत/अपभ्रंश काल माना जाता है। इन्हीं लघुचित्रों व स्थानीय कला से प्रेरणा पाकर विभिन्न लघुचित्र शैलियां पल्लवित हुई जिसमें राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी, दक्षिणी, मालवा बुन्देलखण्ड आदि शैलियां प्रमुख हैं।

उपकल्पना

प्रस्तावित शोधपत्र में यह परिकल्पना की गयी है कि राजस्थानी लघुचित्रों में 'श्रीकृष्ण' को प्रमुख नायक के रूप में चित्रण कर जनमानस में धार्मिक, साहित्यिक, कल्पनात्मक चरित्र चित्रण द्वारा समाज में उनके विभिन्न गूढ रहस्यों व संदेशों को प्रस्तुत करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तावित शोधपत्र की अध्ययन विधि मुख्य रूप से व्याख्यात्मक व विवेचनात्मक है। जो पुस्तकों, संग्राहलयों के चित्रों, साहित्यिक चित्रों, शैलियों के पैन्टिग सैट, कैटलॉग आदि का आश्रय लिया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. भारतीय समृद्ध चित्रण परम्परा के साथ राजस्थानी लघु चित्रों के ऐतिहासिक वैभव की जानकारी प्रस्तुत करना।
2. मध्यकालीन कृष्ण भक्तिधारा और वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कृष्ट स्वरूप का परिचय देना जो तत्कालीन परिवेश में धार्मिक आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ।
3. विभिन्न राजस्थानी लघुचित्र शैलियों का अध्ययन करना जिसमें कृष्ण चरित्र को केन्द्र में रखकर चित्रण हुआ है।
4. श्री कृष्ण को प्रमुख नायक के रूप में प्रस्तुत करना व इनके जीवन काल की विभिन्न चमत्कारिक लीलाओं का प्रस्तुतिकरण भिन्न–भिन्न अवस्थाओं के अनुरूप करना साथ ही श्री कृष्ण के जीवन चरित्र, रंग–रूप, मुद्राओं का अध्ययन विभिन्न राजस्थानी लघुचित्र शैलियों के अनुरूप प्रस्तुत करना।
5. श्री कृष्ण से सम्बन्धित अनेक श्रृंगारिक व धार्मिक काव्य ग्रन्थों की जानकारी देना।
6. श्रृंगार, प्रेम व भक्ति रसधारा को श्री कृष्ण के जीवन से अभिन्न मानते हुए सम्बन्धित चित्र रचनाओं की जानकारी प्रस्तुत करना।

साहित्यावलोकन

राजस्थानी में लघु चित्रों का इतिहास, श्री कृष्ण के चरित्र एवं चित्रण के सन्दर्भ में किये गये इस शोध के महत्व, उद्देश्यों तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य एवं चित्रों का अवलोकन, विश्लेषण व मूल्याकंन किया गया है। जयसिंह नीरज ने अपनी पुस्तक राजस्थानी चित्रकला में राजस्थान चित्र शैलियों की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। रामगोपाल विजयवर्गीय द्वारा लिखित पुस्तक राजस्थानी चित्रकला के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द गोस्वामी की पुस्तक भारतीय कला के विविध स्वरूप, वाचस्पति गैरोला की पुस्तक भारतीय चित्रकला, डॉ. आनंद कुमार स्वामी की पुस्तक राजपूत पेन्टिग, अभिलाषा गोयल की पुस्तक किशनगढ चित्रकला, डॉ. राधाकृष्ण वशिष्ट की पुस्तक मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, डॉ. रीता प्रताप की पुस्तक भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास आदि से प्राप्त महत्वपूर्ण जानकारी इस शोध पत्र में उपयोगी रही है।

राजस्थान में लघुचित्रों की समृद्ध परम्परा

कला के क्षेत्र में राजस्थान के लघुचित्र विश्वकला की अनमोल धरोहर है। किशनगढ, बूंदी, कोटा, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा अलवर आदि विभिन्न शैलियां कला की अनुपम देन सिद्ध हुई।[3] प्रसिद्ध कला समालोचक वाचस्पति गैरोला ने लिखा है 'भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजस्थान के कलाकारों की देन अनुपम व अद्वितीय है। मोहक वातावरण और प्राकृतिक रूप निर्माण के कारण कला एवं काव्य के उद्भव के लिए राजस्थान की धरती स्वाभाविक रूप से उपयुक्त रही है।'[4] राजस्थान की देशी रियासतों के राजपूत राजा स्वभाव से ही श्रृंगार व कला प्रेमी थे। अतः अपनी रियासतों में वे अनेक चित्रकारों, संगीतज्ञों कवियों व शिल्पकारों को प्रश्रय दिये हुए थे। कलाकार अपने संरक्षक राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनके लिए वांछित कलाकृतियों का निर्माण किया करते व पारिश्रमिक स्वरूप स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त करते थे। इस प्रकार यहां की कला शैलियों के विकास व संवर्धन में तत्कालीन राजाओं का पर्याप्त योगदान रहा।[5]

राजस्थानी शैली गुजराती व अपभ्रंश शैली का प्रश्रय पाकर विकसित हुई। वहीं इस पर मुगल शैली का प्रभाव भी था परन्तु अंतर भी बहुत था। मुगल शैली अगर शरीर था तो राजस्थान उसकी आत्मा। आदर्शों की जो छाप अजन्ता कलम में थी राजस्थानी शैली में वही ज्यों की त्यों विद्यमान है।

राजस्थानी चित्रकला का उद्भव व विकास (1550–1850)

राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला वैज्ञानिक विभाजन आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक 'राजपूत पेन्टिंग' (1916 ई.) में किया जिसमें उन्होंने बताया कि राजपूत संरक्षण में जन्मी और विकसित हुई राजस्थानी क्षेत्र की कला को 'राजस्थानी राजपूत कला' के नाम से जाना जाता है।[6] राजस्थानी शैली के उद्भव में स्थानीय लोक शैलियों का योगदान माना जाता है इसके साथ पूर्ण मध्यकाल (7–12वीं सदी) में भारतीय चित्रकला की गुजराती, जैन व अपभ्रंश शैली के रूप में विकसित हुई व आगे चलकर इसी परम्परा में राजस्थानी चित्रकला का उद्भव हुआ। उदाहरण– 'श्रावणप्रतिक्रमणचूणी' (1260 ई. उदयपुर), 'सुपासनाहचर्यम' (1422–23 ई. देलवाडा) 15वीं सदी भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के नाम से विख्यात है तथा इस काल में ईरानी सम्पर्क से राजस्थानी कला परिमार्जित व परिष्कृत हुई। उदाहरण– 'कल्पसूत्र' (1426 ई.), 'बसन्तविलास' (1455 ई.), 'गीत गोविन्द' (1450) तथा 'बालगोपालस्तुति' (1450 ई)।[7] तत्पश्चात् – महापुराण, चौर पंचाशिका, लौर चन्दा आदि में राजस्थानी शैली का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है। विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का प्राचीनतम सैट रागमाला (1605 निसारदीन) तथा रागमाला (1628, साहब्द्दीन) का महत्वपूर्ण है।

रामानुज की वैष्णव आराधना व ब्रज प्रदेश का राजस्थान की सीमा पर होने से राजस्थान की 16वीं शताब्दी की चित्रकला पर वैष्णव का सम्प्रदाय गहरा प्रभाव पडा। उदाहरण– विभिन्न साहित्यिक कृतियां– 'गीत गोविन्द', 'रसिक प्रिया', 'बिहारी सतसई,' 'भागवत पुराण', 'रामायण,' 'महाभारत', 'रागमाला', 'बारहमासा', इत्यादि । 16वीं शताब्दी में राजस्थानी कला पर मुगल प्रभाव भी पडा और परवर्ती काल में यह शैली मुगल सम्बन्ध से बहुत परिमार्जित होती गई। राजस्थान के अनेक नगरों में कुछ ने अपनी विशिष्ट मौलिकताओं के साथ अनेक राजस्थानी शैलियां 16वीं शताब्दी तक विकसित की गई। समस्त राजस्थानी शैलियां 17वीं शताब्दी में विकास को प्राप्त हो जाती है। बीकानेर में मुगल प्रभुत्व हो जाने से इस स्थान की चित्रकला पर मुगल प्रभाव अधिक दिखाई देता है केवल मेवाड़ बहुत समय तक पूर्ण स्वतन्त्र बना रहा और मेवाड़ में ही सर्वप्रथम चित्रकला का पुनरुत्थान हुआ जान पडता है।[8]

राजस्थान लघु चित्रकला में 'श्रीकृष्ण' एक नया अध्ययन

जिस प्रकार यूनान में वीनस व रोम में अफ्रौदीती को महत्व दिया गया है उसी प्रकार भारतीय पारम्परिक लघु चित्रों के रचयिताओं ने अपने चित्रांकन में जितना अंकन श्रीकृष्ण और उनकी लीलाओं का किया है उतना अन्य किसी विषय का नहीं। श्री कृष्ण व उनके रूपों का अंकन उनके लिए सदैव प्रेरणादायी रहा है। शुंग, कुषाण, गुप्तकाल से लेकर उत्तर मध्यकाल में अपभ्रंश शैली के उद्भव के साथ ही इनकी विभिन्न लीलाओं को कलाकारों ने अपनी तूलिका का विषय बनाया। गुप्तकाल के प्रस्तर एवं मिट्टी के फलकों पर भी कृष्णलीला चित्रण देखने को मिलता है। उत्तर मध्यकाल में (15वीं शती के लगभग) अपभ्रंश शैली के उद्भव के साथ ही श्री कृष्ण की विविध लीलाओं यथा माखनचोरी, गोप–क्रीडा, गोवर्धन धारण आदि को कलाकारों ने सुन्दर ढंग से तूलिकाबद्ध किया।[9] मूल रूप से चित्रों की विषयवस्तु तीन भावनाओं से प्रभावित रही। भक्ति श्रृंगार एवं संगीत इसके अलावा चित्रकारों ने दरबारी वैभव तथा शौर्य के चित्रण में भी रुचि ली। ज्यादातर राजपूत राजाओं ने अपने तथा आस–पास बिखरे विषयों में ही अपनी दृष्टि को केन्द्रित किया तथा चित्रकला को प्रोत्साहन दिया, परन्तु समय के अनुसार चित्रकारों ने परम्परागत परिपाटी को तोडकर यथार्थ की तरफ कदम बढाने का प्रयास किया। कलाकारों ने राग–रागनियों, ऋतु चित्रण तथा श्रृंगार सम्बन्धी अनेक चित्रों का अंकन किया। राधा कृष्ण के माध्यम से प्रेम माधुरी की ऐसी वर्षा की कि जिससे साहित्य तथा कला का क्षेत्र भी प्रेमानुराग से सराबोर हो गया और यही विकास मुगल शैली राजस्थानी शैली तथा मध्यभारत की अन्य शैलियों तक विस्तृत हुआ।[10]

राजस्थानी लघु चित्रशैलियों में 'श्रीकृष्ण' चित्रण

15वीं शती के लगभग राजस्थानी लघुचित्र शैली का प्रथम उत्थान माना जाता। यह वही काल था जब श्रीकृष्ण के चरित्र से जन–जन का परिचय कराने वाली ब्रजभाषा की उन्नति और वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टि मार्गीय शाखा का अभ्युदय हुआ बृज भाषा और वल्लभ सम्प्रदाय दोनों ही श्री कृष्ण के आदर्श चरित्र के प्रचार प्रसार में सहभागी बने। श्री कृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध चित्र हमें दो विभिन्न वर्गों में देखने मिलता है, एक वर्ग वह है जिसमें श्रीकृष्ण की शिशु अवस्था तथा बाल–लीलाओं का अंकन हुआ है। दूसरा वर्ग वह जिसमें उन्हें श्रृंगार और अभिसार का प्रतीक मानकर गोपियों, राधा या अन्य नायिका के साथ छेड़छाड़ या प्रेम प्रसंग में संलग्न दिखाया गया है। प्रथम वर्ग में श्रीकृष्ण की माखन चोरी, यशोदा मैया द्वारा उन्हें दण्डित किया जाना। उनकी नजर उतारना तथा बाल्यावस्था में राक्षसों के संहार से संबंधित चित्र भी इन शैलियों में देखने को मिलते हैं।[11] श्री कृष्ण लीला का अन्य पक्ष उनके श्रृंगारी स्वरूप का है। ये श्रृंगार के आलम्बन स्वरूप के प्रतीक बने संयोग व वियोग श्रृंगार की प्रत्येक कलाकृति उनकी लीलाओं से ओतप्रोत होने लगी! जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' काव्य की जितनी भी प्रतियाँ मिलती है उनमें श्री कृष्ण के श्रृंगारी स्वरूप को ही विशेष रूप से उजागर किया गया है। श्री कृष्ण का श्रृंगार–स्वरूप हमें श्रीमद्भागवत के दराभ स्कन्ध तथा 'रास पंचाध्यायी' ग्रन्थ में भी मिलता है।

मेवाड़ क्षेत्र जहां से राजस्थानी लघु चित्रों का आरम्भ माना जाता है। कृष्ण जीवन लीलाओं व कृष्ण से सम्बन्धित अनेक चित्रों व ग्रन्थों का चित्रण इस क्षेत्र में हुआ इसी समय महाराजा कुम्भा के स्वरचित ग्रंथ 'संगीतराज' में नाट्यशालाओं के चित्रों का उल्लेख है इन्होंने गीतगोविन्द, बालगोपाल स्तुति आदि कई सुन्दर

ग्रन्थों की रचना करवाई।[12] आनंद कुमार स्वामी के कैटलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन के मुख्य पृष्ठ के चित्र ''कृष्ण राधा की प्रतीक्षा करते हुए'' का जिक्र हुआ है।[13] मेवाड़ में ही 'रागनी चित्रमाला' जो ''श्री गोपीकृष्ण कनेरिया संग्रह कोलकाता'' में सुरक्षित है चावण्ड में चित्रित की गई थी।[14]

मेवाड में ही भागवतपुराण, नायिका भेद, गीतगोविन्द, सूरसागर रसिक प्रिया बिहारी सतसई आदि ग्रन्थ चित्रित हैं। वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण इन चित्रों में नायक नायिका साधारण पुरुष या स्त्री न होकर कृष्ण और राधा जैसे आदर्श प्रेमी हैं। सूर कृत सूरसागर के आधार पर बने कुछ सचित्र पृष्ठ श्री गोपी कृष्ण कनेरिया संग्रह में सुरक्षित है।[15] प्रारंभ में आनंद कुमार स्वामी ने 1926 ई. में मेवाड़शैली को श्रीनाथजी व उनसे सम्बन्धित चित्रों तक सीमित बताया। ये चित्र नाथद्वारा में वैष्णव सम्प्रदाय के यात्रियों और श्रीवल्लभाचार्य के अनुयायियों को धर्म प्रचार हेतु बांटे जाते हैं।[16] मेवाड़ में ही नाथद्वारा शैली का उद्भव व विकास श्रीनाथजी के स्वरूप की स्थापना 10 फरवरी 1672 ई. के बाद में आंका जाता है। श्री नाथजी की प्रतिमा के साथ अनेक भक्त चित्रकार मथुरा व वृंदावन में अपने हाथों से श्रीनाथजी के विग्रह चित्र बनाए।[17] श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे सज्जायुक्त बडे आकार के कपडे पर जो पर्दे बनाए जाते हैं उन्हें 'पिछवाई' कहते हैं जो नाथद्वारा शैली की मौलिक देन है। कृष्णलीलाओं के चित्रों को चित्रित करने की प्रथा नाथद्वारा में आज भी है इनमें कृष्ण, जन्म, ब्रज की बाललीला, गोचारण, कालिया नाग मर्दन एवं चीरहरण आदि विषयों के अनुरूप चित्रों का निर्माण हो रहा है।[18]

मारवाड़ शैली के चित्रों में श्री कृष्ण बलराम द्वारा कंस के भेजे गए मुष्टिक और चाण्डूर जैसे मल्लों का वध किया जाना अपने उत्कृष्ट रूप में चित्रित किया गया है। एक चित्र में ''श्री कृष्ण द्वारा कंस के शरीर के बाल पकडकर घसीटते हुए'' दिखाया गया है।[19] मारवाड़ शैली में बिहारी सतसई की टीका, रागसार, कृष्ण विलास, राग विलास, संयोग श्रृंगार का दोहा इत्यादि की रचना की महाराजा मानसिंह व तख्तसिंह के समय श्रृंगारपूर्ण चित्रों में कृष्णचरित्र के आधार पर चित्रण हुआ है। अजीतसिंह के समय रसिक प्रिया, गीतगोविन्द आदि श्रृंगाररस के काव्यों पर चित्रण हुआ।[20] मारवाड़ में प्रयुक्त यात्रा में धार्मिक ग्रन्थ एवं प्रेमाख्यान लिखे गए जिन्हें चित्रित भी किया गया। प्रहलाद चरित्र, भागवत, रामायण, कृष्ण लीला इत्यादि।[21]

किशनगढ शैली में कृष्ण के श्रृंगारपूर्ण चित्रों का मनोरम चित्रांकन हुआ है। महाराजा रूपसिंह स्वयं वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित व कृष्णभक्त थे। इन्होंने कृष्ण के बाल, किशोर एवं युवा सभी रूपों की प्रेम लीलाओं का चित्रण करवाया।[22] महाराजा सावन्तसिंह (1699–1764 ई.) का समय कृष्ण लीला व प्रेम आख्यानों से सम्बन्धी चित्रण का स्वर्णकाल रहा है इन्होंने शीघ्र ही अपने आपको राधा कृष्ण की माधुर्य भक्ति में लीन कर लिया।[23] इस समय गीतगोविन्द, भागवत पुराण तथा बिहारी चन्द्रिका पर आधारित चित्रण हुआ।[24] सावन्तसिंह के समय इनको कृष्ण के रूप में तथा इनकी प्रेमिका को राधा के रूप में नागरीदास ने बणी–ठणी नामक चित्र के रूप में चित्रित कर इस शैली को सदा के लिए अमर कर दिया।[25] इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसार के कारण कलाकारों ने राधा कृष्ण की अनेक लीलाओं को लघुचित्रों के रूप में साकार करने पर बल दिया। 'भगवान श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को धारण किए हुए' निहालचंद किशनगढ़ शैली 1755 ई. का प्रसिद्ध चित्र है। कृष्ण के प्रेम लीला के दृश्यों में कहीं की अश्लीलता का पुट नहीं है। गोपियों के कान में ज्यों ही बंशी की धुन की आवाज आती है वे लोक लाज त्यागकर तुरन्त ही कृष्ण के पास पहुंच जाती है। कृष्ण ने गोपियों के साथ पूर्ण चन्द्रमा की रात्रि में रास रचाया, जिस पर कलाकरों ने अनेक चित्र अंकित किए।[26] राधा कृष्ण के इन मनोरम चित्रों में ''सांझी लीला'', ''कृष्णराधा का दुपट्टा पकडते'' तथा ''कृष्ण गोपियों के साथ नृत्य करते हुए'' आदि सुन्दर उदाहरण हैं।[27]

बीकानेर शैली के कतिपय चित्रों में भी चित्रकारों ने श्री कृष्ण के पराक्रम को दर्शाने वाले अनेक सफल चित्र प्रस्तुत किए। महाराजा अनूपसिंह (1669–1698 ई.) के काल में रसिकप्रिया, बारहमासा, भागवत पुराण से सम्बन्धित जो चित्र प्राप्त हुए उनमें बीकानेर शैली के दर्शन होते हैं।[28] भागवत कथा सम्बन्धी चित्र जिनमें कृष्ण चरित्र के आधार पर चित्रण हुआ है जो विषयवस्तु की दृष्टि से बीकानेर शैली के सुन्दर चित्रों में है।[29]

नाथद्वारा की तरह कोटा भी पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र रहा है। कृष्ण बाल लीलाएं, गोचारण, माखन लीला इत्यादि प्रमुख हैं। भगवान श्रीकृष्ण राधाजी के लिए बांसुरी बजाते हुए, 18वीं शताब्दी, बीकानेर शैली का प्रसिद्ध चित्र है। राधाकृष्ण का एक चित्र हैं जिसमें वीणाधारी कृष्ण राधा के पास आए हैं। राधा बैठी है कृष्ण व बलराम पेड़ के नीचे खड़े हैं, सामने एक ग्वाला, गाये व बछड़े हैं। बन्दर, मोर व पक्षी भी हैं। यह चित्र सन् 1700 ई. के आसपास का है।[30] कोटा शैली में प्रारम्भ में कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्र कलाकारों के प्रिय विषय रहे हैं।[31]

बूंदी शैली में एक चित्र 'राधा और कृष्ण का मिलन' (18वीं शताब्दी) जो देसाई संग्रह बम्बई में है जो भावात्मक सौंदर्य के कारण उत्तम है। 'भागवत पुराण' पर आधारित कृष्ण लीला के चित्र बनाने की परम्परा भी यहां विद्यमान रही है।[32] वसन्त रागिनी, राजपूत रागमाला, बूंदी 1660 ई. का प्रमुख चित्र है। बूंदी शैली का एक सम्पूर्ण बारहमासा है जिसमे चैत्र से लेकर फाल्गुन मास तक का चित्रण है इन चित्रों का प्रमुख नायक कृष्ण हैं।[33] एक अन्य चित्र 'कृष्ण के बंशीवादन' का है, जो सन् 1775 ई. का है। कृष्ण यमुना पार है, गोपियां गोकुल में अपने घरों से झांक रही हैं। गायें व गोप वापिस लौट रहे हैं, प्रमुख हैं।[34]

जयपुर शैली में एक चित्र में श्री कृष्ण को गोवर्धन धारण किए हुए अंकित किया गया है। इस चित्र में उनके शरीर में कोमलता का आभास होता है। कृष्ण के चारों ओर गाये, गोपियां तथा ग्वालबाल जो गोवर्धन पर्वत के नीचे खड़े हैं, ऊपर आकाश में बादलों के मध्य स्वर्ग के देवता दिखाए हैं। आकाश में एरावत पर सवार स्वयं इन्द्र श्री कृष्ण की पूजा करने जा रहे हैं।[35] अन्य चित्र 'रास

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

मण्डल' जिसके मध्य में मानव आत्मा और परमात्मा का प्रतीक भगवान श्री कृष्ण और राधिका का युगल है इस युगल के चारों तरफ गोपियां कई मण्डलाकारों में नृत्य कर रही हैं।[36] राजा जयसिंह (1621–67) के दरबारी कवि 'बिहारी' द्वारा रचित बिहारी सतसई ने अनेक चित्रकारों को चित्रण हेतु प्रोत्साहित किया। 'रसिकप्रिया' और 'कृष्ण रूक्मणिबेलि' नामक ग्रन्थ राजा ने अपनी रानी हेतु 1639 ई. में बनवाए थे।[37] कलाकार साहब्द्दीन ने ''राधा कृष्ण का नृत्य'' चित्रित किया व कृष्ण लीला सम्बन्धी पाण्डुलिपियों पर क्रमबद्ध चित्रण किया।[38]

निष्कर्ष

इस प्रकार श्री कृष्ण का व्यक्ति–चित्रांकन इन चित्रों में प्रायः एक सा है। कहीं–कहीं थोडा परिवर्तन है किन्तु मूल आत्मा वही है जैसे कृष्ण के शरीर को नीले रंग से चित्रित किया जाना, होंठो पर मुरली, सिर पर मोरपंख या मुकुट, हाथ में वीणा, पीताम्बर परिधान, पांवों में खड़ाऊ आदि दिखाना इनका प्रमुख लक्षण हैं। श्रृंगार पक्ष की सूक्ष्म संवेदना इन चित्रों में परिलक्षित होती है। श्री कृष्ण के विविध रूपों के साथ पृष्ठभूमि में ब्रज के दृश्य, वृक्ष लताएं, पहाड़, बादल, भवन नदी आदि का अंकन तथा इन्हें गायें व ग्वाल–बालों से घिरा दिखाया जाना इन चित्रों में मुख्य रूप से मुखरित हुआ है। नायिकाओं के जितने चित्रों में उन्हें संयोग सुख में रत दिखाया है, चित्रकारों के समक्ष श्रीकृष्ण का मनोहारी स्वरूप ही रहा है। इस दृष्टि से भारत की प्रत्येक लघुचित्र शैली पूर्ण समृद्ध रही है।[39]

इस प्रकार श्री कृष्ण लघुचित्र शैलियों में प्रमुख नायक के रूप में विख्यात हुए हैं जिससे राजस्थानी लघुचित्र शैलियों में प्रेम, श्रृंगारिका व विभिन्न दृश्यों को एक प्रधान माध्यम प्राप्त हुआ।

'भगवान श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को धारण किए हुए'
निहालचंद किशनगढ़ शैली 1755 ई.

भगवान श्रीकृष्ण राधाजी के लिए बांसुरी बजाते हुए। 18वीं शताब्दी, बीकानेर शैली

वसन्त रागिनी, राजपूत रागमाला, बूंदी 1660 ई.

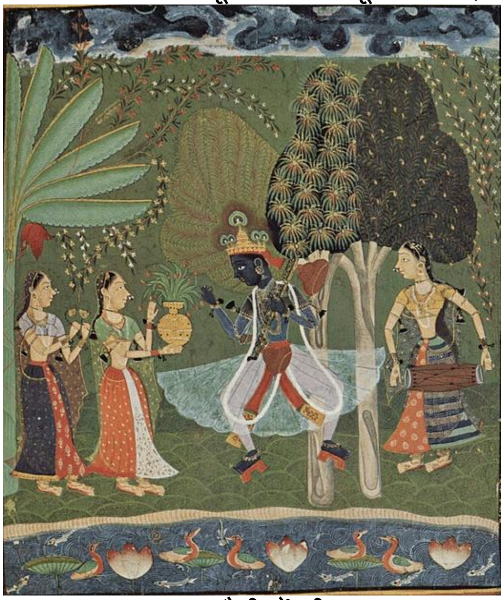

नाथद्वारा शैली में श्रीकृष्ण.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. ममता चतुर्वेदी, पाश्चात्य कला, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 37
2. डॉ. ममता चतुर्वेदी, सौन्दर्य शास्त्र, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 170
3. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 20
4. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963, पृ. 161
5. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 20
6. डॉ. आनंद कुमार स्वामी, राजपूत पेन्टिग वोल्यूम 18 और प दिल्ली, 1976, पृ. 2–3
7. सावित्री धवन तथा विजय कुमार, राजस्थान का इतिहास, पृ. 242
8. डॉ. रामावतार मीणा, रघुनाथ, घनश्याम गोस्वामी, भारतीय चित्रकला, राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर, पृ. 37–38
9. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 31
10. अभिलाषा गोयल, किशनगढ चित्रकला एक विवेचनात्मक अध्ययन, निवाई पब्लिकेशन, 2006, पृ. 106
11. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 107
12. डॉ. राधाकृष्ण वशिष्ट, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, संस्करण 1984, पृ. 94
13. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, अनिल वर्मा, संगीता वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1967, बरेली, पृ. 180
14. वही, पृ. 180
15. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 182
16. आनन्द कुमार स्वामी, केटलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन, भाग–5, पृ. 4
17. जयसिंह नीरज, राजस्थान चित्रकला, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 1994, पृ. 31
18. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 190
19. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 15
20. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 196
21. गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडाइवल राजस्थान, आगरा, 1938, पृ. 12
22. रामगोपाल विजयवर्गीय, राजस्थानी चित्रकला, 1953, पृ. 1–2
23. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 205
24. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, अनिल वर्मा, संगीता वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1967, बरेली, पृ. 197
25. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 205
26. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 84
27. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, अनिल वर्मा, संगीता वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1967, बरेली, पृ. 198
28. मोतीचन्द्र खजांची, बीकानेर की चित्रकला, राजस्थान भारती, भाग–5, पृ. 52–53
29. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963, पृ. 161
30. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 216
31. ब्रजराज सिंह, दी किंगडम दैट वाज कोटा, जयपुर, 1982, पृ. 16
32. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, अनिल वर्मा, संगीता वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1967, बरेली, पृ. 188
33. प्रमोदचन्द्र, बूंदी मार्ग, वोल्यूम–9, पृ. 2
34. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 219
35. एन.सी.मेहता, स्टडीज इन इण्डियन पेण्टिंग, फलक–10,
36. यह चित्र स्टडीज इन इण्डियन पेण्टिंग में प्रकाशित किया गया है, फलक–11
37. सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय पाण्डुलिपि नं. 1847,
38. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पांचवां संस्करण 2009, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, पृ. 228
39. प्रेमचन्द गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, प्रथम संस्करण–1997, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 16